सच्चा तप

अवधनारायण द्विवेदी.

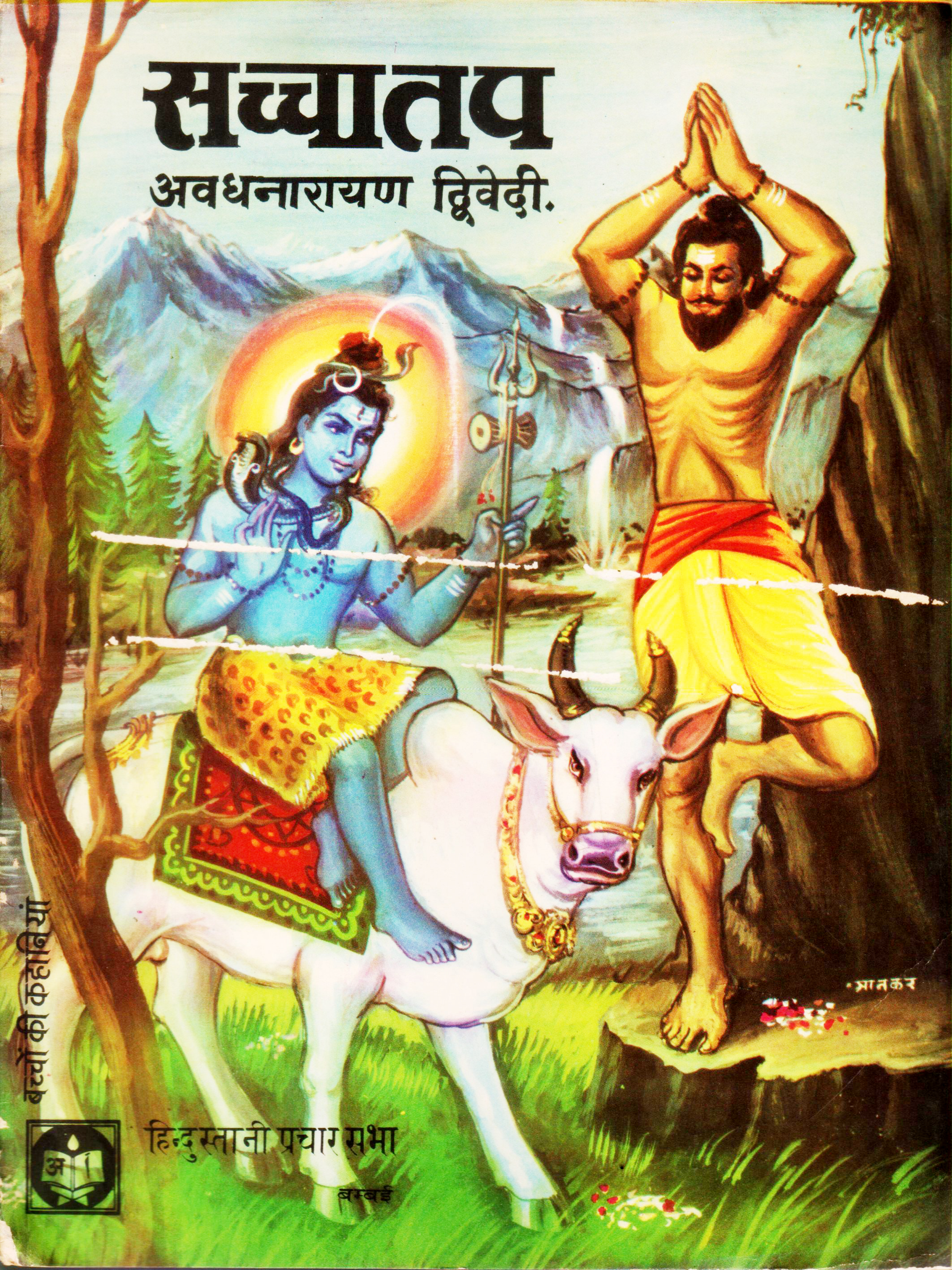

बच्चों की कहानियां

हिन्दुस्तानी प्रचार सभा

बम्बई

हमारे देश की संस्कृति दुनिया में सबसे पुरानी और काफी समृद्ध है। मगर आपसी झगड़ों, जलन और बेर की वजह से हम कमजोर हो गये हैं और इसी वजह से डरी-सहमी हालत में जी रहे हैं। नये जमाने की शिक्षा भी हमें सुधार नहीं पाई है। इसीलिए इस कमजोर और खतरनाक हालत से हम उबर नहीं पा रहे हैं। फिर भी यह हकीकत है कि हमारी संस्कृति अत्यंत जीवंत है, कभी मिट नहीं सकती है।

दूसरे प्राणियों के मुकाबले आदमी में यह एक विशेषता है कि उसमें धर्म की सूझबूझ है। अच्छा-बुरा, धर्म-अधर्म परखने का उसे विवेक है। मैं तो इसे ही सच्चा धर्म मानता हूं। 'धर्म' वही है जिससे आदमी का सुखी, सार्थक जीवन बनता है। धार्मिक इन्सान समझता है कि दूसरों के सुख में उसका भी सुख है। दूसरों को तबाह करके कोई सुखी नहीं हो सकता। दूसरों के दुःख से जो सुख उठाता है, वह अधर्मी है।

सच्चाई और अहिंसा, धर्म पर चलने के दो रास्ते हैं। दुनिया के सभी धर्मों में इन दो बातों पर जोर दिया गया है। हिन्दू, इस्लाम, बौद्ध, ईसाई, पारसी, जैन, सिख आदि सभी धर्मों के पैगम्बरों ने धर्म के जिन आदर्शों की बात कही है, वह हर इन्सान के लिए समान रूप से लागू होती है। हमारे देश की परंपरा में सब धर्मों के लिए इज्जत की भावना रही है। हिन्दू धर्म का दायरा बहुत बड़ा और सबका भला चाहनेवाला रहा है। अफसोस है तो इस बात का कि हम लोगों में एक के बाद एक कमजोरियां आती गईं और एक उदार धर्म की अनमोल दौलत हम संभाल नहीं सके।

आज इस बात की जरूरत है कि दुनिया के विकसित धर्मों में हमारे लिए जो आवश्यक बातें कही गयी हैं उन्हें हम समझें और अपने जीवन में उन पर चलने की कोशिश करें।

नई पीढ़ी को सही समझ और शिक्षा देने के लिए ऐसे विचार उनके सामने रखना जरूरी है जिससे वे आदर्शों की तरफ प्रेरित हों और जिन्दगी का सही रास्ता उन्हें मिल सके।

हिन्दुस्तानी प्रचार सभा ने इसी उद्देश्य से दुनिया के मुख्य धर्मों में जो शिक्षाप्रद कहानियां हैं, बड़े-बड़े संत–पैगम्बरों की जिन्दगी में जो सच्ची घटनाएं हुई हैं, उन्हें लेकर एक सौ सचित्र पुस्तकें छापने की योजना बनाई है।

कहानियां इस तरह रखी गयी हैं कि बच्चों को वे उपदेश नहीं, जीवन से जुड़ी हुई मालूम हों और आसानी से समझ में आ जायें। मुझे उम्मीद है कि बच्चों के माता-पिता भी इन कहानियों को दिलचस्पी से पढ़ेंगे और अपने जीवन को समृद्ध करेंगे।

मुझे उम्मीद है कि इस कोशिश को पसन्द किया जायेगा, इस पर अमल किया जायेगा और इसका प्रचार किया जायेगा।

मोरारजी देसाई

अध्यक्ष,
हिन्दुस्तानी प्रचार सभा

सच्चा तप

अवधनारायण द्विवेदी

हिन्दुस्तानी प्रचार सभा
बम्बई

© हिन्दुस्तानी प्रचार सभा, १९८२

संपादक :

मूलशंकर भट्ट

चित्रकार :

कृ. ल. मानकर

प्रकाशक :

वाडीलाल डगली
मानव मंत्री
हिन्दुस्तानी प्रचार सभा
महात्मा गांधी मेमोरियल बिल्डिंग
७, नेताजी सुभाष रोड
बम्बई–४०० ००२

मुद्रक :

अकील दीवानजी
ऑनलुकर प्रेस
१६, सासुन डाक
कोलाबा, बम्बई–४०० ००५

मूल्य :

दो रुपये

सच्चा तप

बहुत पुराने जमाने की बात है। कन्नौज राज्य में गाधि नाम के एक राजा राज्य करते थे। वे बड़े बहादुर और नेक थे।

महाराज गाधि को एक ही बेटा था, जिसका नाम विश्वरथ था। उसमें भी पिता के सभी गुण मौजूद थे। राज-काज में वह महाराज का हाथ बटाता था। शिकार खेलने का उसे बड़ा शौक था।

एक दिन बहुत सबेरे विश्वरथ साथियों के साथ शिकार के लिए निकला। उसके साथ सेना की टुकड़ी भी थी, जो संकट आने पर उसकी मदद करती। विश्वरथ दलबल के साथ एक घने जंगल में पहुंचा। बहुत देर तक वह हिरण, सूअर, बाघ आदि जानवरों का शिकार करता रहा। तीसरे पहर थककर चूर हो गया।

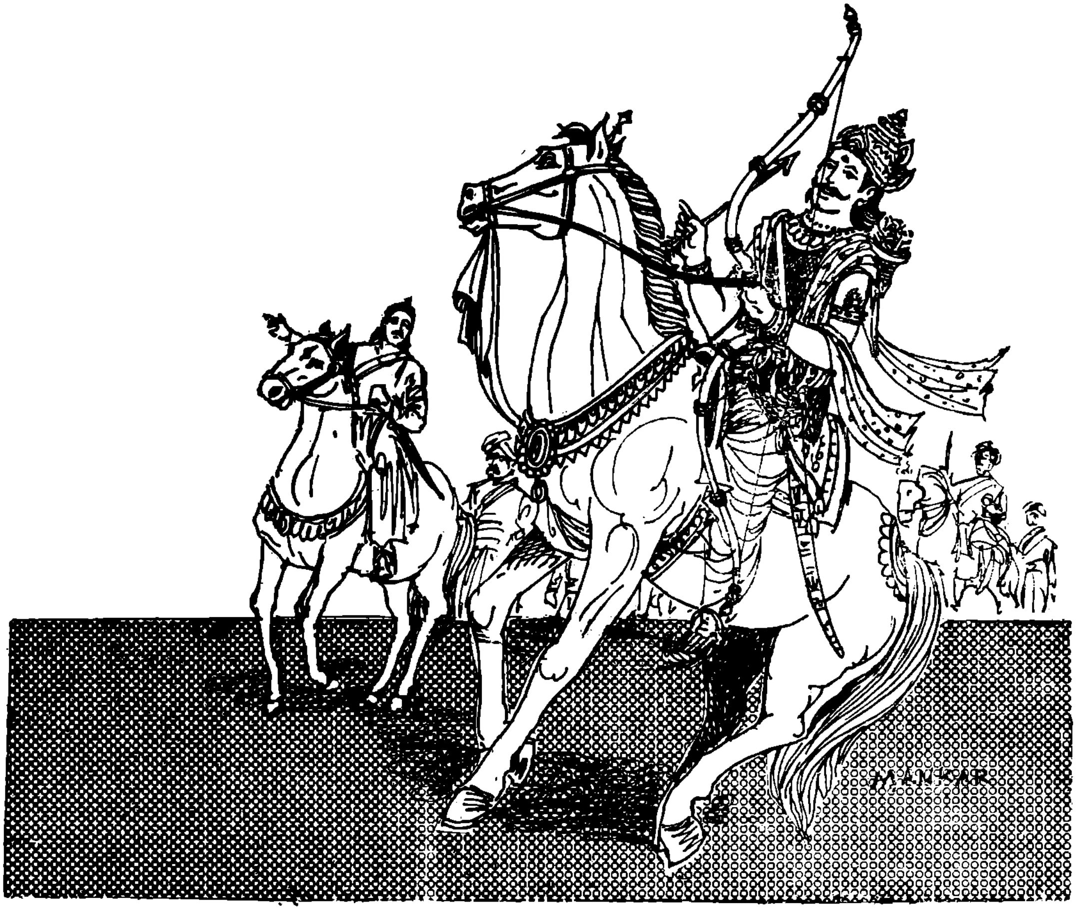

ओठ सूख गये। वह पानी के लिए तड़पने लगा।

उसके साथियों का भी यही हाल था। किसी में आगे बढ़ने की हिम्मत न रही। विश्वरथ घोड़े को पेड़ से बांधकर छाया में सुस्ताने लगा। उसके साथी और सैनिक पानी की तलाश में इधर-उधर दौड़-धूप करने लगे।

कुछ देर बाद एक सिपाही हांफता हुआ आया और बोला, " यहां से थोड़ी ही दूर पर वसिष्ठ मुनि का आश्रम है। वहां हम सबकी प्यास बुझ सकती है, और हमें आराम भी मिल सकता है।"

राजकुमार सब लोगों के साथ वसिष्ठ मुनि के आश्रम में पहुंचा।

वसिष्ठ मुनि को जब यह मालूम

हुआ कि राजकुमार विश्वरथ पधारे हैं, तो उन्होंने आगे बढ़कर उनका स्वागत किया। राजकुमार ने ऋषि को प्रणाम किया और उनसे कुशल-मंगल पूछा।

वसिष्ठ ने आशीर्वाद देते हुए कहा, "राजकुमार, आपके आने से हमारा आश्रम पवित्र हो गया। महाराज गाधि की कृपा और देखभाल से ही हम बेखटक अपने धर्म का पालन कर, अपना जीवन चलाते हैं और सुख की नींद सोते हैं।"

राजकुमार विश्वरथ को लेकर मुनि आश्रम में आये। सबसे पहले उन्होंने ठंडे पानी का इंतजाम किया जिसके लिए सब बेहाल थे। फिर सब लोग आराम करने लगे।

अब वसिष्ठ मुनि को एक ही चिन्ता परेशान कर रही थी कि मेहमान राजकुमार का स्वागत-सत्कार कैसे किया जाये?

उन्होंने अपनी कामधेनु गाय नंदिनी से निवेदन किया, "मां, आश्रम की लाज तुम्हारे हाथ है। राजकुमार का राजा की तरह आदर होना चाहिए।'

नन्दिनी ने कहा, "इसकी चिंता न करो। यह मुझ पर छोड दो। सारी इच्छाएं पूरी करने के लिए ही मेरा जन्म हुआ है। मैं आपकी कामधेनु बनी हूं।"

वसिष्ठ निश्चिंत हो गये।

नंदिनी की कृपा से पल भर में वहां आरामदेह मकान बन गये। आमोद-प्रमोद की सारी चीजें जमा हो गयीं। बहुतेरे दास-दासी सेवा के लिए हाथ जोड़े खड़े हो गये। कोमल बिस्तर, सुन्दर कपड़े, चंदोवे, पशु-पक्षी, सुगंधित फूल, अमृत के समान मीठे फल, एक-से-एक बढ़िया सुस्वादु खाने-पीने की चीजें सोने की थालियों में सज गयीं।

यह सब देखकर लोग खुशी और अचरज में पड़े जा रहे थे। राजकुमार विश्वरथ ने वसिष्ठ ऋषि का यह आयोजन देखा तो उन्हें बड़े-बड़े राज-महाराजे भी नाचीज लगने लगे। राजकुमार तथा उनके साथियों को विदाई में हीरे-जवाहरातों की भी भेंट दी गयी।

राजकुमार सोचने लगा—इस जंगल में ऐसा मंगल कैसे हो गया? सच बात तो यह थी कि उसे राजमहल में भी इतना बढ़िया भोजन और इतने कीमती जेवरात नसीब नहीं हुए थे।

राजकुमार से रहा न गया। उसने वसिष्ठ से पूछा, "महाराज यह सारा जादू आपने कैसे कर डाला?"

वसिष्ठ ने कामधेनु की ओर इशारा करते हुए कहा, "राजकुमार, यह सब नंदिनी की कृपा है। पलक झपकते ही यह मनचाही चीजें ला देती है।"

राजकुमार विश्वरथ का मन ललचाया। उसने सोचा कि ऐसी गाय तो राजमहल में होनी चाहिए। इस जंगल में इसका क्या काम?

उसने अपने मन की बात वसिष्ठ से कह डाली, "ऋषिवर, यह गाय आप मुझे दे दीजिए।"

वसिष्ठ ने कहा, "यह कैसे हो सकता है? मेरी सारी लौकिक-वैदिक साधना इसी के बल-बूते पर चलती है। मैं इसे किसी कीमत पर नहीं दे सकता।"

यह जवाब पाकर राजकुमार के अहंकार को ठेस लगी। उसने सोचा, सीधी अंगुली से घी नहीं निकलता। बोला, "यदि मैं इसे जबर्दस्ती छीन ले जाऊं तो?

"तो मैं क्या कर सकता हूं? आप राजकुमार हैं। साथ में सेना भी है। मैं शांति और अहिंसा का पुजारी आपसे लड़ाई-झगड़ा थोड़े ही मोल ले सकता हूं।"

नौजवान राजकुमार ने अधिकार के मद में सैनिकों से कहा, "हांक ले चलो इस गाय को। यदि सीधे न जाय तो घसीटकर ले चलो।"

सैनिक गाय के पास पहुंचे तो वह बिदककर इधर-उधर भागने लगी। और, जब सिपाहियों ने डंडे चलाये तो वह वसिष्ठ के पीछे जा खड़ी हुई।

वसिष्ठ ने कहा, "मां तुम्हारे दुख से मेरा हृदय फटा जा रहा है। किन्तु तुम मेरी मजबूरी जानती हो। मैं क्षमाधर्मी, अहिंसा का पुजारी ब्राह्मण क्या कर सकता हूं? मैं तुम्हारी ताकत जानता हूं।

"इन्द्र का वज्र, शिव का त्रिशूल और विष्णु का चक्र भी तुम्हारा बाल बांका नहीं कर सकता। इस तुच्छ राजकुमार की हस्ती क्या है? इसलिए मां, तुम जो ठीक समझो करो। हां, इतना और बता देना चाहता हूं कि तुम्हारे बिना यह आश्रम उजड़ जायगा। मैं आश्रम छोड़कर ब्रह्मलोक का रास्ता पकड़ूंगा।"

नंदिनी अपने दुःख से तो नहीं पर वसिष्ठ की आत्मपीड़ा से सिहर उठी। उसका रंग-ढंग बदल गया। उसमें अनोखी ताकत पैदा हो गयी।

नंदिनी ने सिंहनी की तरह गर्दन तानकर सिर ऊपर उठाया। उसकी आंखों से आग बरसने लगी। राजकुमार के सैनिकों के लिए यह दृश्य बड़ा डरावना था। वे भाग खड़े हुए।

राजकुमार ने सैनिकों को ललकारा. "गाय से डरकर भागते हो! शर्म नहीं आती? खबरदार, जिन्दा या मुर्दा इसे ले चलना होगा।"

सैनिक लौट पड़े और एक साथ गाय पर टूट पड़े। लेकिन यह क्या, नंदिनी के रोयें-रोयें से वीरों के झुंड-के-झुंड निकलने लगे। अब दोनों ओर से जमकर लड़ाई

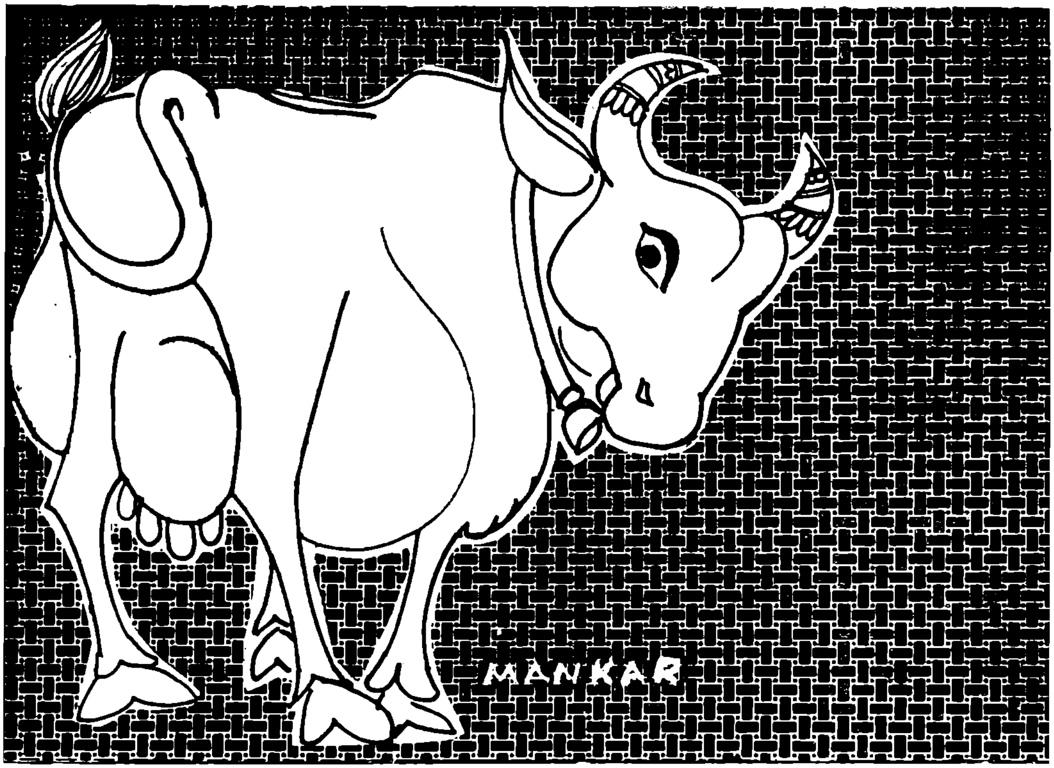

ाने लगी। विश्वरथ के सारे सैनिक ारे गये। उसके लिए भी अब भागने के ावा और कोई चारा न था।

दुश्मनों का नाश करके नंदिनी शांत ोकर आश्रम में हरी-हरी दूब चरने लगी। सिष्ठ प्रेम से उसकी पीठ पर हाथ फेर हे थे, मानो वहां कुछ अप्रिय घटा ा न हो।

जिस समय पराजित राजकुमार विश्वरथ राजभवन में पहुंचा, महारा गाधि सभा में किसी गम्भीर मामले प विचार कर रहे थे। राजकुमार ने उदा मन से महाराज का पैर छुआ।

"बेटा, तू उदास क्यों है?" महारा ने पूछा।

"पिताजी मैं क्षत्रिय हूं, हारा हु क्षत्रिय! मुझे जीने का कोई हक नहीं है

"क्यों, बात क्या है? साप

साफ कहो।"

राजकुमार विश्वरथ ने सारी घटना ज्यों-की-त्यों सुना दी।

महाराज गाधि बोले, "बेटा विश्वरथ, तुमसे बड़ी भूल हुई। उल्टे पांव लौटकर महर्षि वसिष्ठ से क्षमा मांग लो।"

"यह कैसे हो सकता है? मेरा दिल बदले की आग से जल रहा है। क्षत्रिय सब कुछ भूल सकता है, पर अपमान और पराजय नहीं भूल सकता। मैं वसिष्ठ को उसकी हिमाकत का मजा चखाऊंगा।"

"अपनी चीज कोई न दे तो उसे हिमाकत नहीं कहते बेटा। फिर वसिष्ठ जी ब्राह्मण हैं, क्षमा और अहिंसा के धनी!

उनका मुकाबला हम नहीं कर सकते ।"

"क्यों नहीं कर सकते? मां के पेट से गुण लेकर कोई नहीं पैदा होता। सफलता तो मेहनत से मिलती है।"

"तुम्हारी बात सच हो सकती है, लेकिन वसिष्ठ के पास तपस्या का बल है।"

"तो क्या हम तपस्या करके ऐसा बल नहीं प्राप्त कर सकते?"

"क्यों नहीं प्राप्त कर सकते, लेकिन तपस्या का मकसद कल्याणकारी होना चाहिए। बदले की भावना से की गयी तपस्या हानिकर होती है।"

"जो भी हो, मैं तपस्या करूंगा। मैं अभी जा रहा हूं। आशीर्वाद दें आप।"

"जाओ, करो तपस्या। भगवान तुम्हें सुबुद्धि दें।"

राजकुमार विश्वरथ कन्नौज से चलकर सारस्वत प्रदेश पहुंचा। वहां भगवान शिव को प्रसन्न करने के लिए सरस्वती नदी के किनारे तपस्या करने लगा।

वर्षों बाद भगवान शिव प्रकट हुए और उन्होंने विश्वरथ से वरदान मांगने के लिए कहा।

विश्वरथ ने कहा, "प्रभो, यदि आप वरदान देना चाहते हैं तो ऐसा हथियार दीजिए कि कोई मुझे हरा न सके।" भगवान शिव ने ऐसे हथियार उसे दे दिए।

तपोभूमि से चलकर विश्वरथ सीधे वसिष्ठ के आश्रम में पहुंचा, और उन्हें युद्ध के लिए ललकारने लगा।

वसिष्ठ ने कहा, "मैं लड़ाई नहीं कर सकता राजकुमार। मैंने तो अहिंसा और माफी का व्रत लिया है। मुझे लड़ाई-झगड़े से क्या लेना-देना!"

विश्वरथ ने कहा, "लेकिन मैं तो इसलिए आया हूं कि बिना लड़ाई के वापस नहीं जाऊंगा। यदि तुम लड़ाई नहीं करोगे तो भी मैं तुम्हारा सिर काट डालूंगा।"

वसिष्ठ ने कहा, "मौत से मैं नहीं डरता। यदि मेरा सिर काट लेने से तुम्हें संतोष हो तो काट लो मेरा सिर," यह कहकर वसिष्ठ ने विश्वरथ के सामने अपनी गर्दन बढ़ा दी।

विश्वरथ नें तलवार उठायी लेकिन वह आसमान में अटक गयी। कोशिश करने पर भी नीचे नहीं आयी। यह

देखकर विश्वरथ को बड़ा अचरज हुआ। उसने तलवार फेंक दी और उदास होकर वहां से खिसक गया। सोचने लगा कि मेरी वर्षों की तपस्या बेकार गयी। भाग्य ने साथ नहीं दिया और भगवान शंकर ने भी मुझे धोखा दिया।

इस तरह वह चिंता में पड़ा हुआ था कि उसे नारद जी दिखाई पड़े। उसने नारद जी को प्रणाम किया।

नारद जी ने पूछा, "विश्वरथ, तुम उदास क्यों हो?"

विश्वरथ ने सारी कहानी कह सुनाई।

नारद जी ने कहा, "भगवान शंकर किसी को धोखा नहीं देते। उन्होंने लड़ाई में तुम्हारी जीत का वरदान जरूर दिया था, पर वसिष्ठ से तुम्हारी लड़ाई कहां हुई? लड़ाई एकतरफा नहीं हुआ करती।

"अहिंसा के पुजारी, सबको माफ करने वाले वसिष्ठ सच्चे ब्राह्मण हैं। जन्म और कर्म दोनों से। उन पर कोई हथियार काम नहीं कर सकता। तुम हिंसक क्षत्रिय उनका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते। उनकी बराबरी यदि तुम्हें करनी है तो ब्राह्मण बनो, पवित्र बनो। ब्रह्म-बल के सामने क्षत्रिय बल नहीं टिक सकता, यह तुमने देख लिया।"

विश्वरथ ने कहा, "हां, महाराज, मेरे क्षत्रिय-बल को धिक्कार है, जो एक निरीह ब्राह्मण के सामने इस तरह अपमानित हुआ। मैं तपस्या करूंगा, इसी जन्म में ब्राह्मण बनने के लिए। ब्राह्मण ही नहीं, ब्रम्हर्षि बनूंगा, ब्रम्हर्षि!"

इस बार विश्वरथ ने कौशिकी नदी के तट पर देवराज इन्द्र को खुश करने के लिए घोर तपस्या शुरू की। उसकी उग्र तपस्या देखकर इन्द्र ने परीक्षा लेने के लिए धर्म को भेजा।

धर्म ने विश्वरथ के पास पहुंचकर भोजन मांगा।

विश्वरथ ने कहा, "थोड़ी देर रुकिए, मैं अभी चावल पका देता हूं।"

धर्म ने कहा, "अच्छी बात है, मैं अभी आता हूं।"

विश्वरथ चावल पकाकर धर्म की राह देखने लगा, लेकिन धर्म नहीं लौटा। जब वह सौ वर्षों के बाद लौटा तो उसे पता चला कि विश्वरथ अबतक खड़ा-खड़ा

मेरी प्रतीक्षा कर रहा है। इस बात से वह बहुत खुश हुआ।

उसने कहा, "विश्वरथ, तुम्हारी तपस्या पूरी हुई। आज से तुम ब्रह्मर्षि हुए और तुम्हारा नाम विश्वामित्र होगा।"

इस प्रकार विश्वरथ इसी जन्म में ब्राह्मण बनकर, ब्रह्मर्षि हो गया। विश्वामित्र के रूप में उनका नाम चारों ओर फैल गया। किन्तु अहंकार, बदले की भावना, हिंसा आदि भावनाओं से उसका पिंड नहीं छूट पाया था, क्योंकि उसकी तपस्या की जड़ में वसिष्ठ से बदला लेने की दुर्भावना थी।

विश्वामित्र तपोभूमि से सीधे वसिष्ठ के आश्रम में पहुंचे।

उन्हें देखते ही वसिष्ठ उठ खड़े हुए और बोले, "राजर्षि, बहुत दिनों के बाद आये। आपका स्वागत है।"

विश्वामित्र ने कहा, "मुझे राजर्षि नहीं, ब्रह्मर्षि कहिए। साक्षात धर्म ने मुझे यह पदवी दी है।"

वसिष्ठ ने कहा, "मैं जानता हूं। फिर भी मुझे ऐसा लगता है कि अभी

ब्रह्मर्षि के गुण पूरी तरह से आपमें नहीं आ पाये हैं।"

विश्वामित्र ने कहा, "आपके ब्रह्मर्षि कहने या न कहने से क्या फर्क पड़ता है? यह तो सारी दुनिया जानती है कि मैं ब्रह्मर्षि हूं।"

विश्वामित्र दूसरे ऋषियों के आश्रम मे भी गये, लेकिन वसिष्ठ के विरोध के कारण उन्हें किसी ने ब्रह्मर्षि नहीं कहा। सबका यही कहना था कि जबतक वसिष्ठ आपको ब्रह्मर्षि नहीं कहेंगे, तबतक हम भी नहीं कहेंगे।

वसिष्ठ तथा अन्य ऋषियों के व्यवहार ने विश्वामित्र को फिर भड़का दिया। वे सोचने लगे, हाय रे दुर्भाग्य! ब्रह्मर्षि बन जाने पर भी मुझे अपमान का घूंट पीना पड़ रहा है। हमारे यश के रास्ते में वसिष्ठ ही कांटा है। इस कांटे को खतम करना होगा या उसे मजबूर करना होगा कि वह मुझे ब्रह्मर्षि कहे।

विश्वामित्र ने एक राक्षस से साठगांठ की और उसकी मदद से वसिष्ठ के सौ पुत्रों को मरवा डाला।

बेटों के मारे जाने से वसिष्ठ का धीरज छूट गया। वे अपनी पत्नी अरुन्धती को जब बिलखकर रोते देखते तब एकदम अधीर हो उठते। एक बार तो उन्होंने आत्महत्या का विचार भी किया और नदी में कूद पड़े थे, लेकिन बच गये।

पुत्रशोक ने वसिष्ठ को विश्वामित्र के प्रति और भी कठोर बना दिया। उन्होंने निश्चय किया कि मैं हिंसा के सामने सिर नहीं झुकाऊंगा। विश्वामित्र मुझे भले मार डाले, पर जबतक वे ब्राह्मण धर्म नहीं अपनाते, अहिंसा और क्षमा के रास्ते पर नहीं चलते, तबतक मैं उन्हें ब्रह्मर्षि नहीं कहूंगा।

विश्वामित्र का ख्याल था कि बेटों के मारे जाने से वसिष्ठ का दिमाग ठीक हो जायेगा, वे रास्ते पर आ जायेंगे। लेकिन अपने एक शिष्य से उन्होंने जब वसिष्ठ का फैसला सुना तो वे आपे से बाहर हो उठे। गुस्से से कांपने लगे, और मन-ही-मन निश्चय किया कि इस कांटे को रास्ते से हटाना ही पड़ेगा, नहीं तो मेरी सारी तपस्या मिट्टी में मिल जायेगी। ब्रह्मर्षि बनने का सपना पूरा नहीं होगा।

अमावस की रात थी-घनी अंधेरी। हाथ-को-हाथ नहीं सूझता था।

आधी रात बीत चली तब विश्वामित्र कुल्हाड़ी लेकर वसिष्ठ की कुटिया के पीछे छिप गये।

उस समय अरुन्धती और वसिष्ठ बातें कर रहे थे। विश्वामित्र कान लगाकर सुनने लगे।

अरुन्धती, "विश्वामित्र ने हमारे लाड़ले बेटों को मरवा डाला। आप इस पुत्र-शोक को कैसे सह लेते हैं?"

वसिष्ठ, "भगवान की इच्छा। जिसने सौ पुत्र दिए थे, उसने ले लिए। विश्वामित्र तो निमित्तमात्र हैं।"

अरुन्धती, "क्या दया के सागर भगवान की इच्छा ऐसी कठोर होती है?"

वसिष्ठ, "हां, देवी, फूल के समान कोमल भगवान, धर्म की परीक्षा लेने के लिए वज्र के समान कठोर बन जाते हैं।"

अरुन्धती "पिता का दिल इन बातों को सुनकर धीरज धर सकता है, मगर मां का दिल पुत्रशोक से जिन्दगी भर जलता ही रहता है।"

वसिष्ठ, "ऐसा मत कहो देवि! पिता भी तो इस शोक से पागल हो गया था और आत्महत्या जैसा भयंकर पाप कर रहा था।"

अरुन्धती, "आखिर विश्वामित्र से आपका झगड़ा ही क्या है?"

वसिष्ठ, "झगड़ा क्या है? सब जीवों में भगवान का निवास माननेवाले का किसी से झगड़ा हो ही नहीं सकता।"

अरुन्धती, "तो फिर विश्वामित्र आपको दुश्मन क्यों मानता है?"

वसिष्ठ, "समझ का फेर है। मैं जो उन्हें ब्रह्मर्षि नहीं कहता।"

अरुधन्ती, "उस ब्रह्महत्यारे को ब्रह्मर्षि कौन कहेगा? उसने तो सौ-सौ ऋषि-पुत्रों का वध कराया।"

वसिष्ठ, "ऐसा मत कहो देवि! ऋषि-निन्दा का पाप लगेगा। तुम उन्हें नहीं पहचानती। आज उनसे बढ़कर दूसरा तपस्वी नहीं है। उनके प्रति मेरा अगाध प्रेम है, इज्जत है।"

अरुन्धती, "यदि ऐसा है तो उन्हें ब्रह्मर्षि कहनें में आपको क्या एतराज है?"

वसिष्ठ, "इसलिए कि उनके मन से रजोगुण नहीं गया है। हिंसा, द्वेष, बदला घृणा के भाव वे अबतक नहीं छोड़

पाये हैं। जिस दिन वे ऐसा कर पायेंगे, उस दिन सप्तऋषि उनके चरणों की धूल माथे पर चढ़ायेंगे।"

अरुन्धती, "यदि ऐसा कर पाने में कुछ देर हो गयी तो मुझे डर है, यह निपूती कहीं विधवा न हो जाय।"

वसिष्ठ, "ऐसी अशुभ बात मत कहो देवि ! सप्तऋषि मंडल में एक तू ही मेरी सहचरी है। और यदि भगवान की यही इच्छा होगी तो उसके सामने हमारी ताकत ही क्या है?"

अरुन्धती, "ऋषिवर, आप धन्य हैं। मेरे पुत्रशोक का घाव कुछ कम नहीं हुआ है, तो भी आपकी बातों ने उस पर मरहम का काम जरूर किया है।"

इन बातों को सुनकर विश्वामित्र की आंखें खुल गयीं। वे सोचने लगे कि जिसकी हत्या के लिए मैं छिपा हूं, उस

आदमी के मन में मेरे लिए कितने ऊंचे विचार है। अगाध प्रेम है, श्रद्धा है। मैं कितना छोटा और अधम हूं।"

यह सोचते ही उनके दिल से द्वेष, प्रतिहिंसा आदि दुर्भाव पिघलकर आंसू बन गये और आंखों से लगातार बहने लगे। उनके हाथ की कुल्हाड़ी न जाने कब छूटकर गिर गयी।

वे कुटिया के दरवाजे पर पहुंचे और रुंधे कंठ से बोले, "महर्षि वसिष्ठ, हत्यारा विश्वामित्र आपके दरवाजे पर खड़ा है।"

वसिष्ठ हड़बड़ाकर बाहर निकले और दोनों भुजाएं फैलाकर बोले, "आइए ब्रह्मर्षि विश्वामित्र, आपका स्वागत है। इस ब्रह्मबेला में आपके दर्शनों से मैं धन्य हो गया।"

विश्वामित्र वसिष्ठ के चरणों पर गिरते हुए बोले "विश्वामित्र हत्यारा, अधम और नीच है। उसके लिए ब्रम्हर्षि शब्द शर्मनाक है। पश्चाताप से मेरा रोम-रोम जल रहा है। मैं किस मुंह से क्षमा मांगू? शायद आप ही उसे क्षमा मांगने की ताकत दे सकते हैं।"

वसिष्ठ ने उन्हें गले लगाया और बोले, "ब्रह्मर्षि, हम दोनों एक है। आज आपकी ही नहीं, मेरी तपस्या पूरी हुई," यह कहकर वसिष्ठ विश्वामित्र के चरण छूना ही चाहते थे कि उन्होंने अपने चरण पीछे हटा लिए।

जहां उनके चरण थे, उस जगह की धूल अपने माथे पर लगाते हुए वसिष्ठ ने कहा, "आज मैं धन्य हुआ। ब्रह्मर्षि की चरण-धूलि से पवित्र हुआ।"

अरुन्धती यह स्वर्गीय दृश्य एकटक देखती रहीं। उनका पुत्रशोक इस आनन्द की धारा में बह गया। सभी आश्रमवासी जमा हो गये। ब्रह्मर्षि विश्वामित्र और महर्षि वसिष्ठ की जय से आश्रम गूंज उठा। ●

हिन्दुस्तानी प्रचार सभा की स्थापना १९३८ में महात्मा गांधी की प्रेरणा तथा पेरीन बहन कैप्टन के सद्प्रयत्नों से हुई थी। इस संस्था की कोशिश ऐसी राष्ट्रभाषा विकसित करने की रही है, जिसे आम जनता आसानी से समझ सके और जो नागरी व उर्दू दोनों लिपियों में लिखी जा सके। वह भाषा है हिन्दुस्तानी।

हिन्दुस्तानी प्रचार सभा दुनिया के सभी धर्मों से चुनी हुई, ज्ञान और आनन्द से भरी कहानियों की एक सौ किताबों का जो सेट बच्चों के लिए तैयार कर रही है, यह उसकी पांचवीं किश्त है। इस सेट के हर किताब की कीमत दो रुपये होगी।

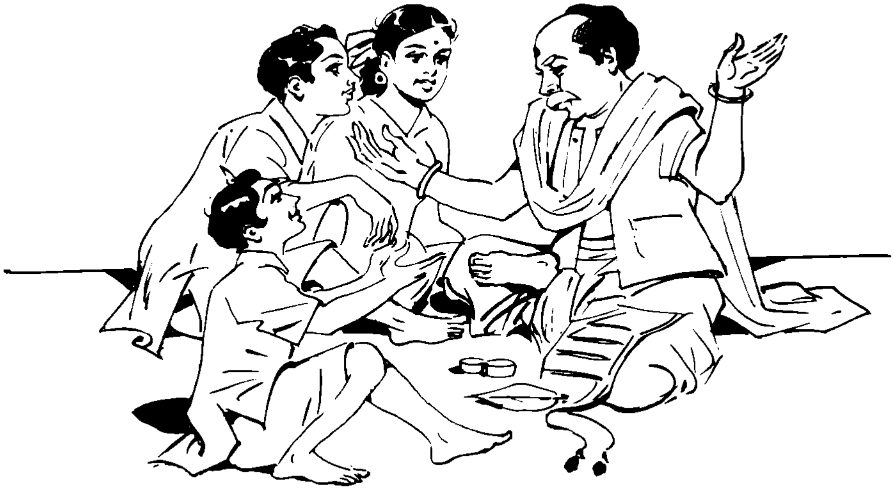

हमारे आगामी प्रकाशन

- राजा महाजनक
- संत जलाराम
- कंजूस इल्लीस
- कूरगडु मुनि
- कण देवता
- बक राक्षस का वध
- हनुमान
- स्वामी विवेकानंद
- सुनहरा नेवला
- भाई हो तो भरत जैसा

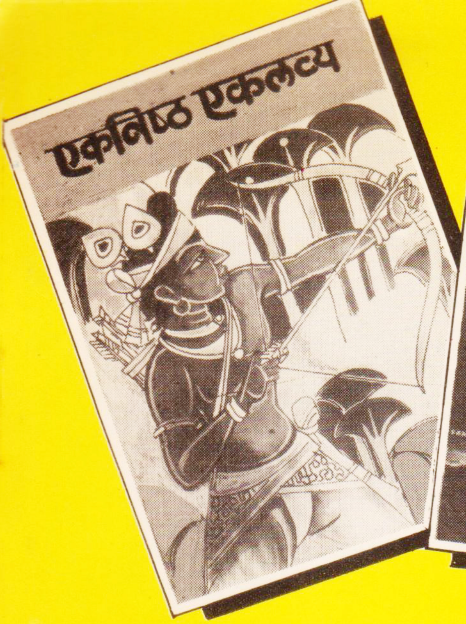

बच्चों की कहानियां

हिन्दुस्तानी प्रचार सभा
महात्मा गांधी मेमोरियल बिल्डिंग
बम्बई-४००००२